अबन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।

अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः ॥३३॥

अन्वय-

अवन्ध्यकोपस्य आपदा विहन्तु देहिनः स्वयम् एव वश्याः भवन्ति । अमर्षशून्येन जन्तुना जातहार्देन जनस्य आदरा न, वा विद्विषादरः न ॥३३॥

अर्थ-

जिसका क्रोध कभी निष्फल नहीं होता-ऐसे विपत्तियो को दूर करने वाले व्यक्ति के वश में लोग स्वयं ही हो जाते है (किन्तु) क्रोध से विहीन व्यक्ति के साथ प्रेम भाव पैदा होने से मनुष्य का आदर नहीं होता और न शत्रुता होने से भय ही होता है ॥३३॥

टिप्पणी-

तात्पर्य यह है कि जिस मनुष्य में अपने अपवार का बक्ता चुकाने की क्षमता नहीं होती उसको मित्रता से न कोई लाभ होता है और न शत्रुता से कोई भय होता है। शोध अथवा अमर्ष से विहीन प्राणी नगण्य होता है । मनुष्य को समय पर क्रोध करना चाहिए और समय पर धामा करनी चाहिए।

परिभ्रमल्लोहितचन्दनोचितः पदातिरन्तर्गिरि रेणुरूषितः।

महारथः सत्यधनस्य मानसं दुनोति नो कच्चिदयं वृकोदरः ॥३४॥

अन्वयः-

(प्राक्) लोहितचन्दनोचितः महारथः अयम् वृकोदरः (सम्प्रति) रेणुरूषितः पदातिः अन्तर्गिरि परिभ्रमन् सत्यधनस्य (ते) मानसं नो दुनोति कच्चित्? ॥३४॥

अर्थ-

(पहले) लाल चन्दन लगाने के अभ्यस्त, रथ पर चलनेवाले (किन्तु सम्प्रति) धूल से भरे हुए पैदल - एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर भ्रमण करने वाले यह भीमसेन क्या सत्यपरापण (आप) के चित्त को खिन्न नहीं करते हैं? ॥३४॥

टिप्पणी-

'सत्यपरायण' यहाँ उलाहने के रूप मे उत्तेजना देने के लिए कहा गया है। छोटे भाइयों की दुर्दशा का चित्र खींच कर द्रौपदी युधिष्ठिर को अत्यन्त उत्तेजित करना चाहती है। उसके इस व्यंग्य का तात्पर्य यह है कि ऐसे पराकमी भाइयों की ऐसी दुर्गति हो रही है और आप उन मायावियों के साथ ऐसी सत्यपरायणता का व्यवहार कर रहे हैं। यहाँ परिकर अलंकार है।